राजा बलि की शिवभक्ति

भक्त प्रह्लाद के पुत्र विरोचन का पुत्र बलि पूर्वजन्म में देवताओं और ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाला एक महापापी जुआरी था। वह सदा परायी स्त्रियों में आसक्त रहता था। एक दिन उसने कपटपूर्ण जूए के द्वारा बहुत धन जीता। फिर अपने हाथों से स्वस्तिक (पान का तिकोना बीड़ा) बनाकर तथा गन्ध और माला आदि सामग्री जुटाकर एक वेश्या को भेंट देने के लिये वह उसके घर की ओर दौड़ा। रास्ते में उसके पैर लड़खड़ा गये और उसी समय वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। गिरने पर क्षण भर के लिये उसे मूर्छा आ गयी; जब मूर्छा दूर हुई, तब पूर्वजन्म के किसी पुण्य के प्रभाव से उसके मन में सद्बुद्धि उत्पन्न हुई। जुआरी दु:खी होकर खेद एवं वैराग्य को प्राप्त हुआ। मूर्ख और जुआरी होने पर भी उसने पृथ्वी पर पड़ी हुई गन्ध, पुष्प आदि श्रेष्ठ सामग्री को भगवान् शिव की सेवा में समर्पित कर दिया। जीवन में केवल यही एक पुण्य उसके द्वारा सम्पन्न हुआ था। मृत्यु के बाद जब यमराज के दूत उसे यमलोक ले गये, तब उस पापी से सबको भय देनेवाले यमराज ने कहा–'ओ मूर्ख! तू अपने पाप के कारण बड़े–बड़े नरकों में यातना भोगने के योग्य है।'

उसने कहा–'यमराज! यदि मेरा कोई पुण्य भी हो तो उसका भलीभाँति विचार कर लीजिये।' तब चित्रगुप्त ने कहा–'तुमने देहान्त होने के समय पृथ्वी पर पड़े हुए कुछ गन्ध और पुष्प आदि को भगवान् शिव के उद्देश्य से दान किया है, परमात्मा शिव को वह सामग्री समर्पित की है; उस सत्कर्म के फल से तुम्हें तीन घड़ी के लिये इन्द्र का प्रसिद्ध पद प्राप्त होगा।'

चित्रगुप्त की बात सुनकर जुआरी ने कहा–'मैं सबसे पहले अपना शुभ कर्म भोगूँगा।' उसके ऐसा कहने पर उदार बुद्धिवाले बृहस्पतिजी सम्पूर्ण देवताओं के साथ तत्काल वहाँ आ पहुँचे और उस जुआरी को ऐरावत हाथी पर चढ़ाकर इन्द्रभवन में ले गये। वहाँ बृहस्पति ने इन्द्र को समझाया–'पुरन्दर! तुम मेरी आज्ञा से इस जुआरी को तीन घड़ी के लिये अपने सिंहासन पर बिठाओ।' गुरु की बात मानकर इन्द्र उदासीन भाव से राज्य छोड़कर अन्यत्र चले गये। तदनन्तर जुआरी को देवराज के भवन में पहुँचाया गया।

तब जुआरी ने वहाँ दान करना आरम्भ किया। महादेवजी के उस भक्त ने 'ऐरावत' हाथी अगस्त्य को दे दिया। उसने 'उच्चै:श्रवा' नाम घोड़ा विश्वामित्र को दे दिया। उसका महान् यश फैला हुआ था। उसने 'कामधेनु' गाय महर्षि वशिष्ठ को दे दी और 'चिन्तामणि' नामक रत्न गालव मुनि को समर्पित कर दिया। उस महातेजस्वी दाता ने 'कल्पवृक्ष' उठाकर कौण्डिन्य मुनि को दे दिया। जुआरी होकर भी वह बड़ा भाग्यशाली था, उसने भगवान् शंकर की प्रसन्नता के लिये वैसे–वैसे अनेक प्रकार के रत्न ऋषि–मुनियों को सहर्ष दान कर दिये। जबतक तीन घड़ी पूरी नहीं हुई, तबतक वह दान देता ही रहा। तीन घड़ी के बाद फिर वह स्वर्ग से चला गया।

इन्द्र जब अमरावती के सिंहासन पर पुन: वापस आये तो वे बृहस्पति से इस प्रकार बोले–'गुरुदेव! ऐरावत हाथी नहीं दिखायी देता, यही दशा उच्चै:श्रवा नामक घोड़े की है। पारिजात आदि सभी पदार्थ किसी

ने चुरा लिये हैं।' तब बृहस्पतिजी बोले–'जुआरी ने यहाँ आकर महान् कर्म किया है, जबतक उसकी सत्ता रही है, उसके भीतर ही उसने आज ऐरावत आदि सभी वस्तुएँ ऋषियों को दान कर दी हैं। बड़ी भारी सत्ता हस्तगत होने पर जो स्वाधीन होते हैं और प्रमाद में न पड़कर सदा भगवान् शिव के ध्यान में तत्पर रहते हैं, वे ही भगवान् शंकर के प्रिय भक्त हैं। वे कर्मफलों का परित्याग कर केवल ज्ञान का आश्रय ले परमपद को प्राप्त होते हैं।'

बृहस्पतिजी का यह वचन सुनकर इन्द्र ने पूछा–'आचार्य! अब हमारा क्या कर्तव्य है, यह शीघ्र बतलाने की कृपा करें।' बृहस्पतिजी ने कहा–'इन्द्र! अपनी समृद्धि के लिये ये सारी बातें प्रायः यमराज से कहनी चाहिये।' 'ठीक है' ऐसा कहकर इन्द्र गुरु बृहस्पति के साथ सहसा वहाँ से चल पड़े। संयमनीपुरी में उन दोनों के पहुँचने पर यमराज ने उनका बड़ा सत्कार किया। उस समय इन्द्र ने कहा–'धर्मराज! तुमने मेरा पद एक दुरात्मा जुआरी को दे दिया, किन्तु उसने वहाँ पहुँचकर बहुत बुरा काम किया। तुम सच मानो उसने मेरे सभी रत्न इन ऋषियों को दान कर दिये हैं। तुम सब कुछ जानते हो, फिर भी एक जुआरी को मेरा स्थान कैसे दे दिया?'

तब धर्मराज ने इन्द्र से इस प्रकार कहा–'तुम बड़े–बड़े देवेश्वरों के राजा हो। बूढ़े हो गये, किन्तु अभीतक तुम्हारी राज्यविषयक आसक्ति दूर नहीं हुई। केवल सौ यज्ञों का अनुष्ठान करके एक ही जन्म के उपार्जित पुण्य का फल यहाँ तुमने प्राप्त किया। परन्तु जुआरी ने तुम्हारी अपेक्षा महान् पुण्य का उपार्जन किया है। अब धन देकर या चरणों में मस्तक झुकाकर विशेषतः अगस्त्य आदि सभी मुनियों की प्रार्थना करके अपने ऐरावत आदि रत्न प्राप्त करने चाहिये।

'बहुत अच्छा' कहकर इन्द्र अपनी अमरावतीपुरी को चले गये। वहाँ जाकर सम्पत्तिशालियों में सबसे श्रेष्ठ इन्द्र ने बहुत धन दे कर ऋषियों से अपनी वस्तुएँ लौटायीं। यमराज ने जुआरी को पुनः जन्म दिया। वह अपने किसी कर्मविपाक से विरोचन का पुत्र हुआ। उस समय उसकी माता का नाम सुरुचि था। सुरुचि विरोचन की रानी थी। उसके पिता का नाम वृषपर्वा था। वह जुआरी जब सुरुचि के गर्भ में आकर स्थित हुआ, तब से प्रह्लादकुमार विरोचन तथा सुरुचि का मन धर्म और दान में अधिक लगने लगा। विरोचन ने दान में इन्द्र को अपना मस्तक भी दे दिया था। विरोचन का वह दान दैत्य, नरेन्द्र तथा नाग–इन तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो गया।

पिता के मरने पर जब उस जुआरी का जन्म हो गया, तब उसकी पतिव्रता माता ने अपना शरीर त्याग दिया। शुक्राचार्य ने उसी पुत्र को पिता के सिंहासन पर अभिषिक्त किया। वही महायशस्वी कुमार लोक में बलि के नाम से विख्यात हुआ। बली ने अपने प्रताप से तीनों लोकों को जीत लिया था।

भगवान् शंकर की कृपा से ही राजा बलि ऐसे महत्त्वशाली हो गये हैं। पूर्वकाल में जुआरी के रूप में उन्होंने परमात्मा शिव के उद्देश्य से जो दान किया था, उसी का यह फल है। अपवित्र भूमि में पहुँच कर गिरी हुई गन्ध, पुष्प आदि समग्री को भी परमात्मा शिव की सेवा में समर्पित करके जब बलि ने इतनी

उन्नति की, तब जो लोग श्रद्धा और भक्ति से महादेवजी की सेवा में गन्ध, पुष्प और जल अर्पण करते हैं उनके लिये तो कहना ही क्या है? वे साक्षात् भगवान् शिव के समीप जाते हैं।

लोमशजी कहते हैं कि – "ब्राह्मणों! भगवान् शिव से बढ़कर दूसरा कोई पूजनीय देवता नहीं है। जो गूँगे हैं, अन्धे हैं, पंगु और जड़ हैं तथा जाति-बहिष्कृत, चाण्डाल, श्वपच और अन्त्यज हैं, वे भी यदि सदा भगवान् शिव के भजन में तत्पर रहें तो परम गति को प्राप्त होते हैं। अत: सम्पूर्ण मनीषी पुरुषों के लिये भी भगवान् शिव ही सदा पूजनीय हैं। पूजनीय ही नहीं, विद्वानों के द्वारा वे सदा चिन्तनीय और वन्दनीय भी हैं। परमार्थतत्त्व के ज्ञाता पुरुष अपने हृदय में विराजमान भगवान् महेश्वर का निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं।"

(उपर्युक्त कथा 'संक्षिप्त स्कन्दपुराणांक' जो गीतप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित है, के तीसरे संस्करण के माहेश्वरखण्ड के केदारखण्ड के अध्याय 18-19 पर आधारित है।)

❁❁❁❁❁❁

भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं–

न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतिर्न च संतति:।।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम्।
सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते।।
वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं च गच्छति।

जन्म, संस्कार, वेदाध्ययन और सन्तति ये सब द्विजत्व के कारण नहीं हैं; द्विजत्व का मुख्य कारण तो सदाचार ही है। संसार में सबलोग आचरण से ही ब्राह्मण माने जाते हैं। उत्तम आचरण में स्थित होनेपर शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो सकता है।

(ब्रह्मपुराण 223/56-58 तथा महाभारत अनुशासनपर्व 143/50-51)